बच्चों का मौलिक लेखन

कमलेश चंद्र जोशी

स्कूल जैसी संस्थाएं बच्चों के मौलिक लेखन को बढ़ावा देने की बजाए एक खास किस्म की शैली प्रदान करती हैं जो बच्चों की अपनी नहीं होती। बच्चों को मौलिक अभिव्यक्ति का मौका ही न दिया जाए तो वे कैसे सीखेंगे भाषा? इतना ही नहीं, अगर बच्चों को उनके मन मुताबिक लिखने, बोलने की स्वतंत्रता दें तो हमें भी उन्हें समझने में मदद मिलेगी।

बच्चों के साथ काम करते हुए मुझे उनकी भाषा को पास से देखने-समझने का काफी मौका मिला है। हमारे बाल केंद्र पर आने वाले बच्चों को स्वतंत्र रूप से लिखने, चित्र बनाने, किताबें पढ़ने जैसे मौके खूब दिए जाते हैं। उनके आसपास के ढेर सारे विषयों (जैसे स्कूल, सूरज, बगीचा, पुल, पतंग, बाज़ार आदि) और बच्चों द्वारा स्वयं पहले बनाए गए स्वतंत्र चित्रों के आधार पर लिखने के लिए भी उनसे कहा जाता है। बच्चों की इन स्वतंत्र अभिव्यक्तियों को पढ़ने पर बच्चों की भाषा व उनकी रचनाशीलता के बारे में गहराई से सोचने-विचारने का अवसर मिला।

जिन बच्चों के मैं उदाहरण दे रहा हूं इन बच्चों की औसत उम्र 8-10 वर्ष है और ये बस्ती की प्राथमिक शाला की तीसरी, चौथी, पांचवीं कक्षाओं में पढ़ते हैं। उनके लेखन में हमने मात्राओं और व्याकरण पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया। हमारा ज़ोर इस बात पर रहा है कि वे स्वतंत्र रूप से लिखना सीखें। यहां पर उनके वाक्यों को ज्यों-का-त्यों रखने की कोशिश

की गई है। हां, हमने मात्राओं को ज़रूर सुधारा है। तो आइए देखें कि बच्चों की यह स्वतंत्र अभिव्यक्ति क्या कहती है।

सूरज जल रहा है

एक चित्र को देखकर उसके बारे में आठ वर्षीय मीना लिखती है – "सूरज जल रहा है। धूप आ रही है। औरत कपड़े सुखाने आ रही है। बारिश आ रही है। उसके सारे कपड़े भीग गए हैं।" यहां मीना का पहला वाक्य है – "सूरज जल रहा है।" इस वाक्य को बच्चों की शब्दावली के अनुसार देखें तो यह वाक्य बिल्कुल ठीक है क्योंकि आठ वर्षीय मीना को अभी 'चमकने' व 'जलने' के बीच का बारीक अंतर नहीं मालूम। हम यह भी कह सकते हैं कि उसका शब्द-भंडार अभी इतना विकसित नहीं हो पाया है।

इसके अलावा मीना के लेखन से कुछ बातें और स्पष्ट होती हैं। हम लोगों की समझ के अनुसार उसके वाक्यों में अभी कोई तारतम्य नहीं है। (हालांकि उसकी उम्र व भाषा की समझ के अनुसार वह बिलकुल ठीक है) अगर हम इन वाक्यों को व्यवस्थित करें तो शायद हम लिखेंगे – बारिश आने से सारे कपड़े भीग गए। अब सूरज चमक रहा है। धूप आ रही है। औरत कपड़े सुखा रही है।

लेकिन यहां हम अपनी समझ के अनुसार इन वाक्यों को पूर्ण रूप से सही संदर्भ में रखने की कोशिश कर

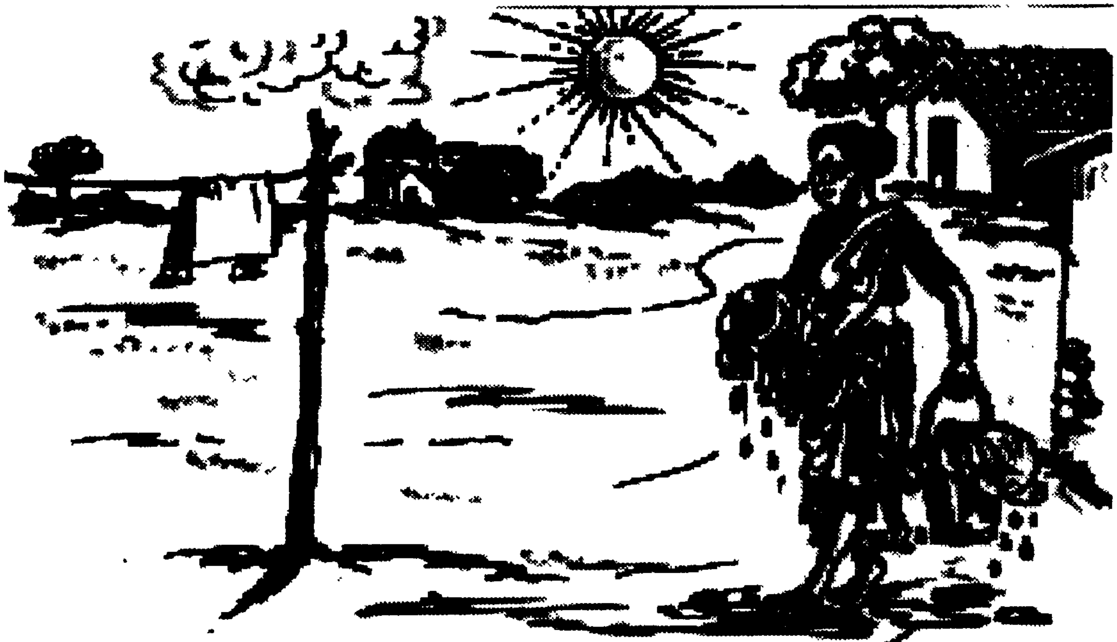

रहे हैं जिससे हमारा आशय अन्य लोग समझ सकें। लेकिन मीना ने क्या किया? उसने चित्र की चीज़ों को अलग-अलग करके देखा है। उसके आधार पर उसने एक-एक वाक्य लिखा। लेकिन वह अपने सारे वाक्यों को हम 'बुजुर्गों' के मानसिक स्तर के अनुरूप एक क्रमबद्ध, पूर्ण संदर्भ में नहीं रख पाई (उसके मानसिक स्तर के अनुसार ये अलग-अलग वाक्य एक संदर्भ बनाते हैं)। उसके इन वाक्यों को हम बड़ों को समझने में थोड़ी दिक्कत होती है क्योंकि हम मीना के स्तर पर नहीं उतर सकते। लेकिन मीना जानती है कि वह क्या लिखना या कहना चाह रही है। यहां मैं यह अनुरोध करना चाहता हूं कि हम बच्चों के लेखन को उनके मानसिक स्तर पर जाकर समझने की कोशिश करें।

मीना ने सूरज के लिए 'चमकना' की बजाए 'जलना' शब्द का क्यों इस्तेमाल किया इसकी एक और व्याख्या संभव है। हो सकता है कि चमकना शब्द मीना जानती हो हालांकि किसी के दिमाग में नहीं झांका जा सकता। फिर भी मैं सोचता हूं कि कहीं मीना यह तो नहीं सोचती है कि चमकने से भला कोई चीज़ कैसे सूख सकती है? जैसे बिजली चमकती है, जुगनू चमकते हैं, तारे चमकते हैं। क्या ये चमकने वाली चीज़ें अन्य चीज़ों को सुखाती हैं? शायद इसलिए उसने 'चमकना' का प्रयोग न करके 'जलना' शब्द का प्रयोग किया हो।

शब्दों के इस्तेमाल से जुड़ी एक बात और संभव है जो लिखते समय अक्सर हमें भी महसूस होती है – कभी-कभी हमें उस मौके पर उपयुक्त शब्द नहीं मिलते इसलिए यह संभावना भी है कि मीना 'चमकना' शब्द से परिचित तो है लेकिन लिखते समय उसे यह शब्द सूझा न हो।

अखबार के मायने

अब उक्त लेखन को ज़रा हम अपने प्राथमिक विद्यालयों के संदर्भ में देखें। हमारे विद्यालयों में औपचारिक भाषा पर इतना ज़्यादा बल दिया जाता है कि बच्चों की मौलिक भाषा का विकास नहीं हो पाता। यही बात हमें बच्चों की पाठ्य-पुस्तकों में भी दिखती है। जबकि होना यह चाहिए कि बच्चों को भाषा सिखाने के लिए उन्हें स्वतंत्र रूप से कुछ करने का मौका दिया जाना चाहिए। उन्हें औपचारिकता में नहीं बांधना चाहिए। बच्चों को पढ़ने-लिखने की जितनी सार्थक सामग्री मिलेगी वे खुद-ब-खुद लिखने-पढ़ने में रुचि लेने लगेंगे। उनकी भाषा स्वतः विकसित होती जाएगी। उन्हें स्वयं ही मात्राओं और व्याकरण का ज्ञान होता जाएगा। उन्हें रटने की ज़रूरत भी

नहीं पड़ेगी।

इसी तरह 'अखबार' के बारे में आठ वर्ष की पार्वती लिखती है – "अखबार से नेताओं को बड़ी आसानी होती है। जहां कहीं खबरें पहुंचानी होती हैं तो वे अखबार के द्वारा पहुंचा देते हैं जैसे कि हवाई जहाज़ में आग लग गई। टी. वी. में आज क्या आएगा?"

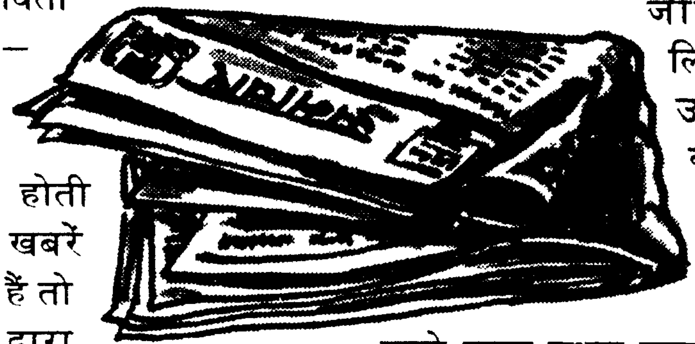

यहां पार्वती ने भी अपनी समझ के अनुसार बिल्कुल सही लिखा है। नेताओं का ज़िक्र उसने इसलिए किया क्योंकि आमतौर पर सारे अखबारों में राजनैतिक खबरें व नेताओं के फोटो ज़्यादा होते हैं। इन्हीं अखबारों को वह अक्सर देखती रहती है।

यदि हमारी मंशा बच्चों से यह है कि 'अखबार' के बारे में वे किताबी निबंध लिखें तो साफ है कि हमें सफलता हासिल नहीं होगी। बच्चों से निबंधनुमा शैली की अपेक्षा करने के बजाए यह देखना चाहिए कि बच्चे अपनी सोच-समझ के अनुसार कितना लिख पा रहे हैं? उन्हें इसके लिए अधिक-से-अधिक प्रेरित करना चाहिए। कुल मिलाकर सार यह कि बच्चे यहां पर रटी हुई बात नहीं अपने मन की बात लिख रहे हैं।

मेरा स्कूल

'स्कूल' के बारे में बच्चों ने अपने जीवन्त अनुभव लिखे हैं। क्योंकि उनका इससे रोज़ का वास्ता होता है। नौ साल का विनोद लिखता है – "स्कूल में बच्चे बहुत उधम मचाते हैं। स्कूल में बच्चे पढ़ते नहीं हैं। बच्चे स्कूल में खेलते रहते हैं। स्कूल में दीदी नहीं पढ़ाती हैं। बच्चे स्कूल में इधर-उधर घूमते रहते हैं। स्कूल में बच्चे एक-दूसरे को मारते रहते हैं। स्कूल में बच्चे दीदी का कहना नहीं मानते।"

विनोद की उक्त स्वाभाविक अभिव्यक्ति की प्राथमिक स्कूलों में लिखवाए जाने वाले निबंध से तुलना करें तो हम पाते हैं कि जो स्कूल में लिखाया जाता है वह वास्तविकता से कोसों दूर होता है। जबकि यहां पर विनोद का लेखन वास्तविकता का वर्णन करने का प्रयास करता है। लेकिन ऐसे लेखन का हमारे विद्यालयों में कोई महत्व नहीं है। अगर विनोद इन्हीं बातों को स्कूल की कॉपी में लिख दे तो इसे तुरंत काट दिया जाएगा।

इसके अलावा हमारे विद्यालयों में जो स्कूल में निबंध लिखाया जाता है उसकी भाषा बेहद कृत्रिम होती है।

उसमें कोई रोचकता नहीं होती। केवल साधारण वाक्य होते हैं। उसमें विद्यालय का कोई जीवंत स्पन्दन नहीं मिलता। वहां लिखवाया जाता है – "मैं कक्षा .... में पढ़ता हूं। मेरे विद्यालय का नाम .... है। इसमें .... कमरे हैं। हमारे विद्यालय में........ अध्यापक हैं। हमारे विद्यालय में एक हरा-भरा खेल का मैदान है। वहां पर हम खेलते हैं। हमारी कक्षा अध्यापिका का नाम........ है। वे बहुत अच्छी हैं। वे हमें अच्छी तरह पढ़ाती हैं, आदि।" इसी तरह के निबंध हमारी अंग्रेज़ी-हिन्दी की भाषा और व्याकरण की पुस्तकों में काफी तादाद में देखने को मिलते हैं।

यह भाषा बच्चों की भाषा से कतई मेल नहीं खाती और परिक्षाओं के लिए बच्चों को इस निबंध को ज़बरदस्ती 'रटना' पड़ता है। क्योंकि निबंध के लिए अंक भी सबसे अधिक निर्धारित होते हैं इसलिए निबंध रटना बच्चों के लिए बेहद ज़रूरी माना जाता है। अक्सर घर में बच्चों के पालक भी उन्हें निबंध रटवाते नज़र आते हैं।

मौलिक लेखन को बढ़ावा

इसी तरह बच्चों ने उनके द्वारा ही बनाए गए तमाम चित्रों तथा अपने आसपास के विषयों पर बहुत-सी बातें लिखी हैं। उन्हें पढ़कर स्पष्ट समझ बनती है कि बच्चों को स्वतंत्र रूप से लिखने के मौके देकर हम उनकी स्वाभाविक सोच व कल्पनाशीलता को बढ़ावा दे रहे हैं। इससे बच्चों की लिखित भाषा का विकास भी हो रहा है।

ऐसी लेखन गतिविधियां करवाते समय हमें बच्चों के स्वतंत्र लेखन को कुछ वाक्यों/पैराग्राफ/पृष्ठ की सीमा में नहीं बांधना चाहिए। यह इसलिए कि प्रत्येक बच्चे का अपना भाषा-ज्ञान होता है। उनकी अपनी वाक्य बनाने की क्षमता होती है। यूं तो प्राथमिक विद्यालयों के सभी बच्चे अभी पूरी तरह लिखना ही नहीं जानते। सीमा निर्धारण के कारण बच्चे अपने लेखन को ज़बरदस्ती खींचते हैं क्योंकि उन्हें कॉपी में उतनी जगह तो भरनी ही है। इसे पूरा करने में वे अपनी मौलिकता खो देते हैं। वहां पर उनके वाक्यों में दोहराव और कृत्रिमता झलकने लगती है।

बच्चों के लेखन में यह भी देखने को मिलता है कि जो बच्चे अभी पूरी तरह नहीं लिख पाते वे अक्सर मात्राओं की गलती करते हैं। इस कारण वे लिखना भी नहीं चाहते क्योंकि उनके मन में शंका रहती है कि जो मैं लिख रहा हूं, क्या वह सही होगा? उनके मन में सही-गलत की भावना बहुत रहती है। यह उनको स्कूल तथा आसपास के माहौल से प्राप्त होती है। इसलिए हमारे लिए ज़रूरी है कि बच्चों

को लिखने के लिए प्रेरित करने के लिए इस तरह का माहौल बनाया जाए कि वे बिना मात्रा-व्याकरण की चिंता किए स्वतंत्र रूप से लिखें।

काश! मैं भी पतंग उड़ा पाती

हम लोगों ने बच्चों के द्वारा खुद के लिखे पर जब उनसे समूह में बैठकर बात की तो कई सारे प्रश्न उभरकर आए। जैसे बस्ती में पीपल के पेड़ के नीचे क्या-क्या होता है? इस पर उन्होंने ढेर सारी बातें लिखीं और उस पर बातचीत के दौरान उन्होंने कई महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए जैसे कि दस साल की बबीता ने कहा – "लोग पेड़ के नीचे लड़ाई करते हैं और पेड़ की पूजा भी करते हैं।" इसी तरह नौ वर्ष के अशोक ने बताया – "आदमी लोग पेड़ के नीचे जुआ खेलते हैं। लेकिन हमें डिबरी खेलने के लिए मना करते हैं।" इन प्रश्नों का उत्तर देने में हम भी लाचार रहे। हां, बच्चों के तर्क थे दमदार। हमें इसी बात की खुशी थी कि बच्चे भी वज़नदार सवाल पेश कर रहे थे। दरअसल यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम उन्हें बोलने की कितनी जगह देते हैं।

इसी तरह से 'पतंग' विषय पर बच्चों ने ढेरों सुंदर चित्र बनाए और अपनी बातें भी लिखीं। लेकिन मुझे दस वर्ष कीं शाहिदा और बेबी की इन पंक्तियों ने सोचने को मजबूर किया – "हम लड़की न होते तो खूब पतंग उड़ाते। लड़की हूं, इसलिए मां मना करती है।" शाहिदा और बेबी की इन अभिव्यक्तियों का कोई सरल हल हमारे पास नहीं है क्योंकि हमारी सामाजिक मान्यताएं ऐसी हैं। इनके बारे में हम क्या करें हमें भी कुछ समझ में नहीं आता। बच्चों की इन बातों को हम उनकी माताओं के समक्ष मासिक बैठक में ज़रूर रखते हैं। उन्हें भी आश्चर्य होता है कि उनके बच्चे भी बस्ती की छोटी-छोटी चीज़ों को गहराई से महसूस करते हैं।

छुट्टियां यानी काम का बोझ

'गर्मी की छुट्टियों' का हमें अपने बचपन में बहुत इंतज़ार रहता था क्योंकि उस दौरान स्कूली बोझिल काम-काज से राहत मिलती थी। लेकिन कई बच्चों के संदर्भ में ये छुट्टियां कितनी उबाऊ और निरुत्साहित करने वाली हो सकती हैं इसका अंदाज़ा भी पहली बार बच्चों का लेखन पढ़कर ही लगा। इन छुट्टियों के बारे में विनोद ने लिखा है – "अम्मा-दादा छुट्टियां होते ही दुकान पर ले जाते हैं। रेहड़ी के साथ जाना पड़ता है। छुट्टियों में स्कूल का काम भी नहीं करता। कहानी पढ़ने का समय नहीं मिलता।"

इसी तरह से बिमलेश ने लिखा– "मुझे छुट्टियों में गांव जाना अच्छा नहीं लगता। मशीन चलाते हुए हाथ

दर्द होने लगता है। छुट्टियां होती हैं तो घर का काम ज़्यादा करना पड़ता है। छुट्टियां अच्छी नहीं लगती। खेलने नहीं देते। अपने साथ काम पर ले जाते हैं।''

ये कथन हमारे मन में बैठे 'छुट्टियों के रोमांच' की धारणा को तोड़ते हैं। और यह अहसास कराते हैं कि सबके लिए सब कुछ एक जैसा नहीं होता।

इन बच्चों के साथ काम करते हुए यह भ्रम भी टूटता है कि गांव-बस्ती के बच्चों का पढ़ने-लिखने में मन नहीं लगता। हमें तो सदैव बच्चों के साथ बातचीत से यह महसूस हुआ है कि इनका पढ़ने-लिखने में खूब मन लगता है। लेकिन शायद उन्हें इतने अवसर नहीं मिल पाते। एक बार फिर विनोद की बात को याद कीजिए – ''कहानी पढ़ने का समय भी नहीं मिलता।''

कुल मिलाकर बच्चों की इन स्वतंत्र अभिव्यक्तियों से समझ में आता है कि बच्चों की उक्त बातें उनकी लिखित भाषा के विकास के साथ-साथ उनकी अपनी दुनिया व उनकी सोच को बताती हैं। बच्चों का स्वतंत्र लेखन उनकी रचनाशीलता को और उर्वर करता है। केवल हमें ज़रूरत है उन्हें भरपूर मौके देने की जो हमें और हमारे स्कूलों को करना चाहिए।

कमलेश चंद्र जोशी: लखनऊ में नालंदा संस्था के साथ काम करते हैं।
चित्र – राजेश यादव। राजेश इटारसी में रहते हैं।